भगवान शिव

शोषितों के मित्र या शत्रु?

(शास्त्रीय समीक्षा)

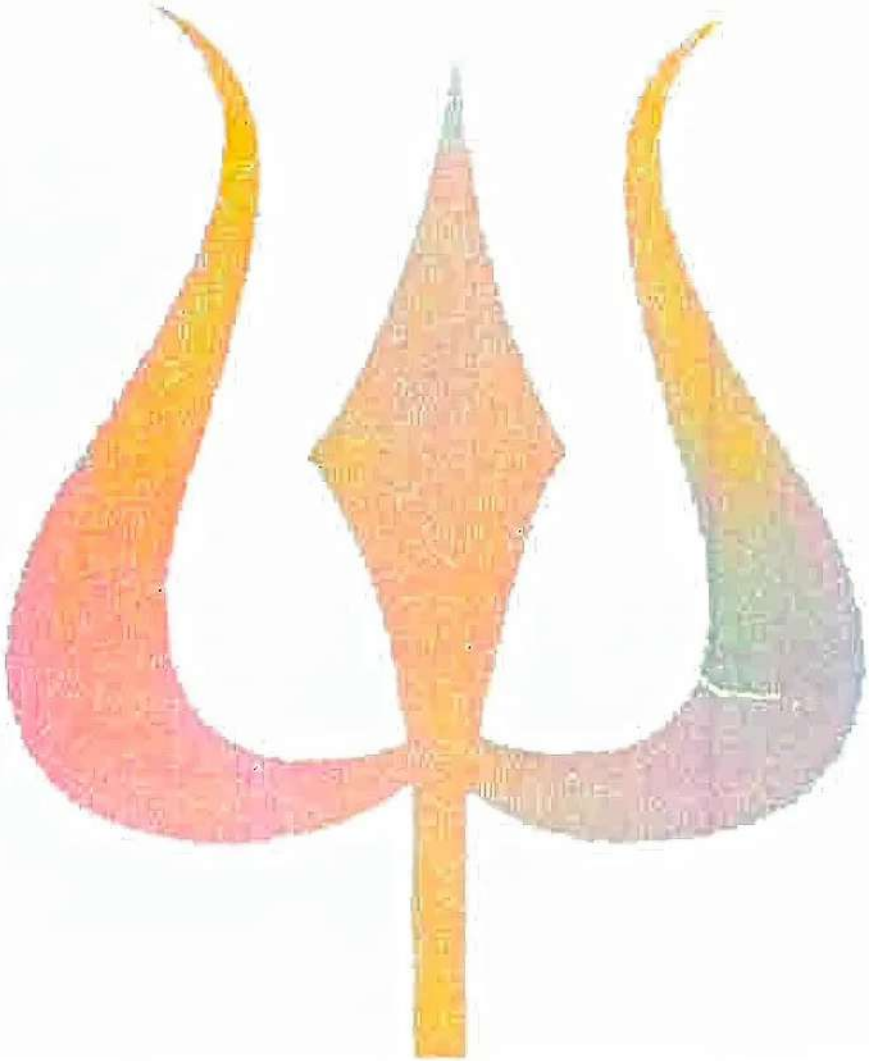

सृष्टि-विकास के मंवंतर-सिद्धान्त के प्रतिपादक

मंवंतराचार्य एस. एल. धनी

आई.ए.एस.

मन्वन्तराचार्य एस. एल. धनी

- लेखक विश्व-विख्यात् विद्वान-प्रशासक कवि, विचारक और समीक्षक हैं।
- लेखक सृष्टि-विकास के मन्वन्तर-सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं जिसके सम्बन्ध में उनके शोध-पत्र इन्डियन नेशनल साईंस अकादमी, वर्ल्ड थियोसोफिकल सोसाइटी और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विज्ञान-सम्मेलनों में पढ़े जा चुके है, उनके साक्षात्कार भारत में रेडियो, टी.वी. और इंग्लैण्ड में ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन द्वारा प्रसारित किये जा चुके हैं।
- लेखक हिन्दु धर्म और दर्शन पर लगभग एक दर्जन विश्लेषणात्मक ग्रन्थ लिख चुके हैं जिनमें से अधिकांश समाचार-पत्रों में चर्चित रहते हैं।

SELECT OPINIONS

Mr. Dhani analyses Manu-Smriti and scholastic works to portray the true character of Hinduism. For those filled with illusions and myths, Mr. Dhani provides a brilliant de-mystifier. He explodes many a devoutly cherished myth and obdurately emphasised belief. Are we ready to countenance so much reality about ourselves? -V.N. Narayanan, Editor-in-chief, The Tribune

Mr. S.L. Dhani has done a great service by studying the philosophy of administration contained in our ancient scriptures and giving it a mythological interpretation. - Dr. Karan Singh, Formerly Union Minister, Govt. of India

पुस्तकों की विस्तृत जानकारी हेतु लिखें या वेबसाइट देखें

Website : www.gautambookcentre.com
Email : gautambookcentre@gmail.com

₹-20

सिद्धार्थ बुक्स
प्रकाशक एवं वितरक
C-263 A, "चन्दन सदन"
हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली-110093
Ph. : 22810380, 9810173667

ISBN 978-93-81530-11-5

भगवान शिव

शोषितों के मित्र या शत्रु?

(शास्त्रीय समीक्षा)

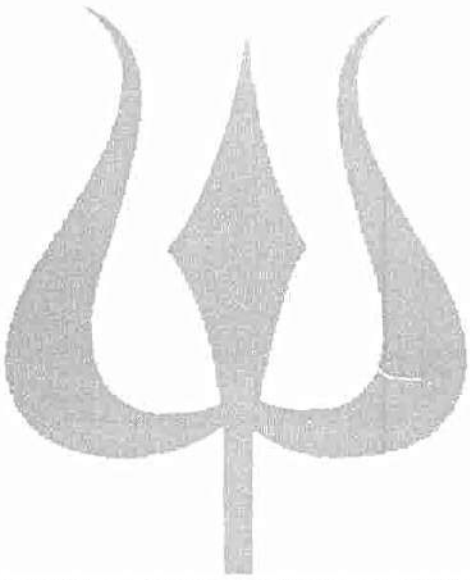

सृष्टि-विकास के मंवंतर-सिद्धान्त के प्रतिपादक

मंवंतराचार्य एस. एल. धनी

आई.ए.एस.

ISBN : 978-93-81530-11-5

सिद्धार्थ बुक्स
'चन्दन सदन' सी-263 ए, गली नं.-9,
हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली-110093
फोन-22810380, 9810173667

प्रथम संस्करण : 2012

© सुरक्षित

मुखपृष्ठ : अनिल कुमार, दिल्ली

मूल्य : 20.00

लेजर टाइपसेटिंग : अनुज कंप्यूटर्स

बालाजी आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली
द्वारा मुद्रित

भगवान शिव–शोषितों के मित्र या शत्रु?
(शास्त्रीय समीक्षा)

'शिव' हिन्दू संस्कृति में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नाम है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दू धर्म में भगवान को परतत्व, ईश्वर, परमात्मा आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है और उसकी तीन अवस्थाएं समझी जाती हैं–ब्रह्मा, विष्णु और शिव। इन तीनों को मिलाकर भगवान को त्रिमूर्ति भी कहा जा सकता है।

शिव और संहार

त्रिमूर्ति के उपर्युक्त तीन सदस्यों के तीन भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्तव्य समझे जाते हैं। भगवान ब्रह्मा का कर्तव्य सृष्टि की रचना करना है, भगवान विष्णु का कर्तव्य उस सृष्टि का पालन करना है और भगवान शिव का कर्तव्य उक्त सृष्टि का संहार करना है। हिन्दू विचारधारा के अनुसार सृष्टि रचना, उसका पालन और संहार यथाक्रम होता रहता है और इस प्रकार संहार के पश्चात् रचना कार्य इस क्रम में स्वयमेव आ जाता है। यह सिलसिला चलता रहता है।

पुराणों के अनुसार एक बार रची जाने के पश्चात् सृष्टि की स्थिति 4 अरब, 32 करोड़ वर्षों तक चलती है। इस काल को एक कल्प अथवा ब्रह्मा का एक दिन कहा जाता है। इस सृष्टि के संहार के पश्चात् इतनी ही अवधि की रात्रि मानी जाती है और इसकी समाप्ति के पश्चात् पुनः सृष्टि रचना का कार्य आरम्भ हो जाता है।

इस कथन का यह भाव प्रतीत होता है कि किसी भी विचार भाव वर्ग अथवा संस्था का जन्म होने के पश्चात् जितनी देर उसकी स्थिति रहती है, यदि वह समाप्त हो जाये तो उसके पुनरुत्थान में उसके स्थिति काल के बराबर की अवधि का समय लगना चाहिए।

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक दूसरे के समान माने जाते

हैं। परन्तु फिर भी पुराणों में शिव को महादेव माना गया है। यह उल्लेखनीय है कि यह उपाधि ब्रह्मा और विष्णु को नहीं दी गई है। विश्लेषणात्मक दृष्टि से यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कई कथाओं में ब्रह्मा को सर्वोच्च माना जाता है, कई अन्य कथाओं में विष्णु और कई अन्य कथाओं में शिव को सर्वोच्च माना जाता है। मोटे रूप में देखा जाए तो शिव का स्थान ब्रह्मा और विष्णु से कम नहीं है और इसी प्रकार ब्रह्मा का वर्चस्व विष्णु और शिव से कम नहीं है और विष्णु का ब्रह्मा और शिव से कम नहीं है।

दूसरे शब्दों में अपने-अपने हिसाब से इन तीनों अंशों में से प्रत्येक ही शेष दो के मुकाबले में प्रमुख एवं अधिक महत्वपूर्ण है और किसी-न-किसी हिसाब से प्रत्येक की स्थिति दूसरे दो के मुकाबले में कमजोर है।

दार्शनिक भाव

सृष्टि, संस्थिति और संहार, ये शब्द केवल ब्रह्मांड के सम्बन्ध में ही सार्थक नहीं हैं, बल्कि संसार की किसी भी वस्तु, जीव, भाव, विचारधारा एवं दर्शन सभी के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन सभी का किसी समय जन्म होता है। ये सभी कुछ समय के लिए जीवित अथवा प्रासंगिक रहते हैं। किसी समय वे काल-प्रवाह में विलीन हो जाते हैं और उनके विलय के पश्चात् उनकी जन्म स्थिति और समाप्ति का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

भगवान ब्रह्मा को क्योंकि किसी भी सृष्टि का रचनाकार बताया गया है और भगवान विष्णु को उसी सृष्टि का पालनकर्ता बताया गया है, वैचारिक दृष्टि से भगवान विष्णु को भगवान ब्रह्मा का सदैव समर्थक माना जा सकता है, क्योंकि यदि सृष्टि ही न होगी तो भगवान विष्णु किसका पालन करेंगे और यदि सृष्टि का संहार हो गया तो भी विष्णु किसका पालन करेंगे? इस विचार से विष्णु को स्वयं को कार्यमग्न रखने के लिए सृष्टि की स्थिति की लगातार आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार भगवान ब्रह्मा को भी स्वयं द्वारा बनाई गई सृष्टि के संचालनकर्ता के लिए कृतज्ञ अथवा एहसानमंद रहना चाहिए। दूसरे शब्दों में, भगवान ब्रह्मा और भगवान विष्णु दोनों को सहज ही हिन्दू धर्म की सारी विचारधारा, उसकी सारी पुरा-कथाएं और उसका सारा दर्शन इसी सत्य को उजागर करने के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं।

भगवान शिव का महत्व

भगवान शिव त्रिमूर्ति की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति हैं, यह हम देख चुके हैं, क्योंकि उनका कर्तव्य संहार करना है, जिसके पश्चात् किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं रहता। सम्भवतः इसी कारण उन्हें महादेव कहा गया है।

संहार किसी भी वस्तु के विनाश का द्योतक है और इसलिए मृत्यु का संकेत देता है। इसी कारण भगवान शिव को काल और उसके एक रूप को महा-शिव और इसी से उन्हें "महाकाल" कहा गया है।

वैसे तो हिन्दू धर्म के अनेक ग्रन्थ हैं, लेकिन उसकी विस्तृत गाथा पुराणों के माध्यम से की गई है। जैसे कि विदित है पुराणों के कई प्रकार हैं जैसे महापुराण, उप पुराण, अति पुराण और लघु पुराण और इन सभी प्रकार के पुराणों की संख्या 18-18 है। महापुराणों में से 6 महापुराण भगवान शिव को समर्पित हैं और इस दृष्टि से पुराणों के संदर्भ में भगवान शिव का दर्जा भगवान ब्रह्मा और भगवान विष्णु से कम नहीं है। भारत वर्ष में वैदिक समय से भगवान या परतत्व की पूजा केवल पुरुष रूप में की जाती थी और बाद में परतत्व को नारी रूप में भी स्वीकार कर लिया गया, जिसके फलस्वरूप देवी की पूजा भी होने लगी। शायद किसी समय भारत देश के सांस्कृतिक विचार से दो भाग थे, एक भाग में समाज पुरुष-प्रधान था और दूसरे भाग में समाज स्त्री-प्रधान था और इसी कारण परतत्व अथवा सर्वोपरि शक्ति को एक भाग में पुरुष रूप में माना गया और दूसरे भाग में स्त्री रूप में।

संस्कृतियों में टकराव और समन्वय की प्रक्रिया सदा चलती रहती है। इसलिए अधिक विस्तार में न जाते हुए यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि पुरुष-प्रधान और स्त्री-प्रधान शक्तियों का जब तालमेल हुआ, तो स्त्री-प्रधान समाज ने पुरुष-प्रधान समाज को और पुरुष-प्रधान समाज ने स्त्री-प्रधान समाज को अपने बराबर का मान लिया। सम्भवतः दोनों ओर अनेक छोटी शक्तियों की कल्पना की जा चुकी थी, इसलिए दोनों ओर की शक्तियों की तुलना करते हुए एक ही शक्ति के पुरुष-वाचक नामों का मानवीयकरण कर लिया गया।

परतत्व के कार्य के मुख्य 3 अंश हैं—सृष्टि, पालन और संहार। इनके पुरुष-वाचक देवताओं के नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। इन अंशों के स्त्री-वाचक नाम या तो पहले ही विद्यमान थे या उनकी किसी समय बाद में कल्पना कर ली गई और उन्हें क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी एवं शक्ति के रूप में मान लिया

गया और धीरे-धीरे ब्रह्मा-सरस्वती, विष्णु-लक्ष्मी और शिव-पार्वती के युगल रूपों में पूजा होने लगी।

सांस्कृतिक विचार के आधार पर चूंकि शिव काले थे और संहार से संबंधित थे, इसलिए उन्हें काला और काल कहा गया और इसी कारण इनकी पत्नी का नाम भी काली हो गया। काल मृत्यु अथवा विध्वंस का द्योतक है और विध्वंस कभी सामान्य प्रकार का होता है और कभी अत्यधिक भीषण प्रकार का। सामान्य प्रकार के विध्वंस को 'काल' कहा गया और भीषण प्रकार के विध्वंस को 'महा-काल।' इसी कारण शिव का नाम महा-काल रूप में महादेव माना जाता है और इसी कारण इनका स्त्री-सूचक नाम 'महाकाली' हो गया।

पुराणों में भगवान शिव की पत्नी के कई नाम हैं जैसे कि काली, दुर्गा, पार्वती, उमा, कात्यायणि, गौरी, ईश्वरी, भवानी, रुद्राणी, सर्वमंगला, अर्पणा, चंडिका अम्बिका आदि। ये सभी पार्वती के पर्यायवाची नाम हैं। हिन्दू-धर्म में पुरुष रूप में भगवान की पूजा के साथ-साथ प्रत्येक घर में देवी की पूजा भी होती है। देवी की पूजा मुख्यतः अनार्य संस्कृति से संबंधित है और भगवान शिव भी अनार्य संस्कृति से संबंधित थे। इस दृष्टि से देवियों के जो नाम और प्रकार हैं, उनका उद्गम अनार्य संस्कृति से ही माना जा सकता है। इस दृष्टि से भगवान ब्रह्मा की 'सरस्वती' और भगवान विष्णु की 'लक्ष्मी' को भी अनार्य संस्कृति से आर्यों द्वारा स्वीकार कर लेने की बात स्पष्ट दिखाई देती है। इन अर्थों में जहां-जहां देवी की पूजा होती है, वहां-वहां भगवान शिव का अथवा अनार्यों का प्रभाव अनिवार्य रूप में मान लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भगवान शिव के कई पुत्र हैं, जिनमें गणेश, कार्तिकेय, सुब्रह्मन्य आदि महत्वपूर्ण हैं। गणेश का महत्व तो सर्वविदित है ही, क्योंकि हिन्दू धर्म में कोई भी कार्य श्री गणेश के नाम से ही आरम्भ होता है। इस प्रकार भी भगवान शिव का महत्व अत्यधिक है।

भगवान ब्रह्मा को चतुर्मुख माना जाता है, परन्तु पुराणों में शिव को पांच मुख वाला और उनके पुत्र कार्तिकेय को छः मुखी माना गया है। इस दृष्टि से भी शिव और उनके पुत्रों का महत्व सर्वाधिक प्रतीत होता है।

सारे ही पुराण भगवान ब्रह्मा, विष्णु और शिव की स्तुति से और उनसे संबंधित कथाओं से भरे पड़े हैं, इससे भी भगवान शिव का महत्व स्पष्ट है। भगवान शिव के कई अवतार माने जाते हैं जिनमें दुर्वासा, वानर शत और वरुण

मुख्य रूप में पुराणों, महाभारत और रामायण में उल्लिखित हैं।

पुराणों के अनुसार भगवान शिव वरदान देने में काफी तत्पर रहते हैं। पौराणिक इनसाईक्लोपीडिया नामक पुस्तक में पुराणों के आधार पर भगवान शिव द्वारा दिये गये 27 वरदानों का वर्णन है।

भगवान शिव को प्रसन्न करना सबसे सहज माना जाता है। ऐसा भी विचार है कि भगवान शिव को प्रसन्न करने में भक्त धोखे से भी काम ले सकते हैं और उनसे ऐसा वरदान भी प्राप्त कर सकने में समर्थ हो जाते हैं, जिसके कारण भगवान शिव स्वयं भी कठिनाई में पड़ जाते हैं। वरदान संबंधित कथाओं में भस्मासुर को दिया गया वरदान काफी प्रचलित है।

भगवान शिव को कैलाशपति कहा जाता है। पुराणों के अनुसार गंगा का अवतरण भगवान शिव की जटा में हुआ था, पौराणिक कथा के समुद्र-मंथन के समय कालकूट विष उत्पन्न हुआ था तो देवताओं और असुरों की रक्षा के लिए भगवान शिव ने इस विष को स्वयं अपने मुख में रख लिया था। इस प्रकार यदि भगवान शिव संबंधी कथाओं को हिंदू-धर्म से निकाल दिया जाये, तो हिन्दू-धर्म का बचा रूप महत्वपूर्ण नहीं रहता।

भगवान शिव का वास्तविक महत्व हिन्दू धर्म के शास्त्रीय आधार की पृष्ठभूमि में जाना जा सकता है। हिन्दूधर्म का मुख्य आधार वर्णाश्रम-धर्म है, जिसका अर्थ यह है कि चार वर्णों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बंटा हुआ है और एक मनुष्य की आयु को 100 वर्ष मानकर उसके 25-25 वर्ष के चार भाग बनाए गए हैं, जिसके प्रथम भाग को ब्रह्मचर्य आश्रम, दूसरे को गृहस्थ आश्रम, तीसरे को वानप्रस्थ आश्रम और चौथे को सन्यासाश्रम कहा गया है।

सभी देवी-देवताओं और भगवान के अनेक स्वरूपों में केवल भगवान शिव ऐसी शक्ति है जिनकी तीन आँखें हैं। पुराण-कथाओं के अनुसार जब उनकी तीसरी आंख खुलती है तो वे तांडव-नृत्य करना आरम्भ कर देते हैं और उस तांडव-नृत्य के साथ संसार का विनाश आरम्भ हो जाता है। इस दृष्टि से शिव का मुकाबला करने वाली कोई और शक्ति नहीं है।

एक पुराण-कथा के अनुसार ब्रह्मा-पुत्र 'दक्ष' की पुत्री ने शिव के साथ विवाह करने का निर्णय लिया। दक्ष ने शिव के अनेक अवगुण बताकर अपनी पुत्री का मन शिव की ओर से फेरने का प्रयत्न किया। पद्म-पुराण के "दक्ष-यज्ञ

विध्वंस" नामक चौथे अध्याय में शिव के जो अवगुण बताए गए हैं, वे इस प्रकार है–

वे नरकपाल के पात्र को धारण करते हैं, व्याघ्र चर्म और भस्म धारण करते हैं, हाथी के चर्म को ओढ़ते हैं, नर-मुंड माला पहने होते हैं और हाथ में खाट का एक पाया रखते हैं।

परन्तु दक्ष-पुत्री "सती" अपनी जिद्द पर अड़ी रहती है और अन्ततः वह यज्ञ वेदी में जल कर मर जाती है। भगवान शिव को जब यह पता चलता है, तो वे आकर यज्ञ का विध्वंस कर देते हैं, समस्त देवों को जीत लेते हैं। बाद में उन्हें शान्त करने के लिए दक्ष ने हिमवान की एक पुत्री उमा का विवाह उनके साथ यह कहकर कर दिया कि उसकी मृत सती ने उमा के रूप में जन्म लिया है।

एक और कथा के अनुसार गंगा ब्रह्मा की पुत्री हैं उधर वे भगवान शिव की पत्नी भी हैं, जिसको शिव ने अपनी जटाओं में धारण किया था। इस दृष्टि से भगवान शिव की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे ब्रह्मा, दक्ष और हिमवान के दामाद हैं।

हिन्दू धर्म में ज्योतिर्लिंगों का बहुत महत्व है। पुराणों में अनेक स्थलों पर सृष्टि-आरम्भ होने से पूर्व ब्रह्मा और विष्णु के आपसी झगड़े के अवसर पर ज्योतिर्लिंग के उत्पन्न होने की कथा कही गई है। अनेक पुराणों के अनुवादक प. श्रीराम शर्मा के अनुसार एक आध पुराण में इस प्रसंग में ब्रह्मा जी और विष्णु को शिव की अपेक्षा बहुत नीचा दिखाया गया है। वायु पुराण में इस कथा के सम्बन्ध में भगवान शिव से भगवान् ब्रह्मा और भगवान विष्णु को यह कहलवाया गया है कि "देवताओं में श्रेष्ठ! मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। पूर्व काल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से उत्पन्न हुए थे। यह लोक पितामह, ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं और ये नित्य युद्ध में स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बाएं हाथ हैं।" इस कथा से भी भगवान शिव का महत्व काफी अधिक प्रतीत होता है।

कालिका पुराण के अनुसार भगवान ब्रह्मा के कहने पर दक्ष ने भगवान विष्णु की माया योग निद्रा को अपनी पुत्री बताया और भगवान शिव को मोहित करने के लिए उन्हें पत्नी रूप में दिया। इस कथा से यह संकेत मिलता है कि भगवान शिव को ब्रह्मा और विष्णु स्त्रियों के मोहजाल में फंसा कर अपना कोई

स्वार्थ सिद्ध करते थे। चूंकि भगवान शिव का अन्य कोई संहार नहीं कर सकता और वे सब का संहार कर सकते हैं, भगवान ब्रह्मा और विष्णु के लिए उनके प्रकोप से बचने का यही सरल तरीका था।

स्कन्द पुराण के काशी-खण्ड में कहा गया है कि जैसे शिव हैं वैसे ही विष्णु हैं और जैसे विष्णु हैं वैसे ही शिव हैं, इन दोनों में तनिक भी अन्तर नहीं है। इसी पुराण के महेश्वर-खण्ड में यह भी बताया गया है कि जो विष्णु हैं, उन्हीं को शिव जानना चाहिए और जो शिव हैं उन्हीं को विष्णु मानना चाहिए।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव में टकराव

पुराणों को ध्यान में रखते हुए यदि देखा जाए, तो ऐसा लगता है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव का स्वतन्त्र अस्तित्व है। उनके विशिष्ट प्रकार के कर्तव्य हैं, जिनमें कई बार टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में इन तीनों में से कोई दो एक के विरुद्ध हो जाते हैं, जिससे अलग प्रकार के परिणाम निकलते हैं। सामान्यतः ब्रह्मा और विष्णु आपस में मिल जाते हैं और शिव से कोई-न-कोई गलती करवा लेते हैं। शिव छली नहीं हैं, वे भोले हैं, क्रोधी हैं। इसलिए या तो क्रोध में आकर वे विध्वंसात्मक कार्यवाही करते हैं या भोलेपन के कारण वे कुछ ऐसा कर बैठते हैं, जिससे उनको भोलानाथ अर्थात् भोले लोगों में सबसे भोला की उपहासजनक उपाधि मिल जाती है। यही स्थिति सदा भारत में ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति की मिलीभगत से सामान्य जनता की रही है। इस प्रकार से भी शिव सामान्यतः भोली जनता के प्रतीक हैं। इस दृष्टि से ब्राह्मण राजनीतिज्ञों और क्षत्रिय उनके हथियार रूप नौकरशाही के प्रतीक बन जाते हैं।

ब्राह्मण, वैष्णव और शैव

यहां पर एक और बात को जानना स्वभाविक है। भारत में एक वैष्णव सम्प्रदाय है जो विष्णु के उपासकों का है। एक शैव सम्प्रदाय है जो शिव के उपासकों का है। यदि वैष्णव विष्णु के उपासक का नाम है और शैव शिव के उपासक का नाम है, तो यह भी युक्तियुक्त लगता है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के उपासक का नाम हो। वास्तव में आरम्भ में बात यही रही होगी, परन्तु ब्रह्मा के उपासकों ने विष्णु और शिव की प्रधानता को कम करने या समाप्त करने के अभिप्राय से उनके नाम पर चले सम्प्रदायों में घुसपैठ कर ली और उनके

उपासक बनकर उनके वास्तविक उपासकों का नेतृत्व प्राप्त कर लिया और स्वयं को ब्रह्मा के उपासक होने की वास्तविकता को गौण बना लिया।

विष्णु का नीला वर्ण इस तथ्य का द्योतक है कि वह नस्ल की दृष्टि से न तो पूर्णतया गोरी है। और न पूर्णतयाः काली है, और कि वह इन दोनों के मिश्रण का परिणाम है।

वेदों और पुराणों को देखने से ऐसा भी विदित होता है कि आरम्भ में भगवान शिव के स्थान पर रुद्र का महत्व अधिक होता था और भगवान शिव रुद्र के परिवर्तित रूप में उभरे हैं, जिसके फलस्वरूप भगवान शिव का रूप कल्याणकारी हो गया है और भगवान रुद्र का रूप पहले के अनुसार भयानक अथवा रोने या रुलाने वाला हो रहा है।

चातुर्वण्यम नई व्यवस्था

ऐतिहासिक दृष्टि से लगता है कि जब आर्यों का अधिकार क्षेत्र बढ़ा, तो उनको अपनी व्यवस्था सुदृढ़ करनी पड़ी। परिणामस्वरूप उनके दो भाग हो गए। एक भाग का कार्य नीति निर्धारण करना और व्यवस्था बनाना रह गया और दूसरे भाग का कर्तव्य उस नीति को कार्यान्वित करना। इस नई स्थिति में क्षत्रियों का नया वर्ग उभरा और उसके मुख्य देवता व्यवस्था बनाये रखने वाले भगवान विष्णु बन गये। इस प्रकार कुल तीन वर्ण हो गये। बाद में अनार्य लोगों के भी दो भाग हो गये। जो भाग ऊपर के दो वर्णों के प्रभाव में आ गया, उसको दूसरा जन्म देकर द्विज बनाकर एक नया वर्ग वैश्य बना लिया और शेष बचे अनार्य, जो दास बना लिये गये, उन्हें शूद्र कहा गया।

कुछ ऐसे अनार्य भी रह गये, जो न तो आर्यों के प्रभाव में आये और न ही उनके दास बने। वे जंगलों में घूमते हुए आर्य जाति के लिये और उनके दूसरे साथियों के लिए सिर दर्द बने रहें। उन लोगों को जंगली, दस्यु, शत्रु और अपनी मृत्यु स्वरूप अथवा काल स्वरूप समझा जाता रहा। उनमें से भी जो लड़ते-लड़ते तंग आकर पेट की भूख मिटाने के लिए बस्तियों के पास आकर कुछ भी हीन कार्य करते रहने पर मजबूर हो गये, उनको बाह्य या अन्त्यज अथवा अछूत कहा जाने लगा। समाज का यह बदलता क्रम ही रुद्र से शिव (काल) और शिव से महा-शिव (महा-काल) की कहानी बताता है। इस दृष्टि से सभी देवता वास्तव में विशेष वर्गों के सामूहिक नाम अथवा प्रतीकों के और उन्हीं के रंग रूप में सार्थक होते हैं।

आस्तिकता और नास्तिकता भाव भी इन्हीं अर्थों में सार्थक होता है। जो व्यक्ति वर्ग भावना का समर्थक न होकर वर्ग विशेष के केन्द्र बिन्दु विशेष प्रतीक को न माने उसको इस वर्ग के नेता और अनुयायी नास्तिक कहकर समाप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार नास्तिक का अर्थ व्यवहारिक रूप में बदल जाता हैं। नास्तिक यह नहीं होता जो भगवान के अस्तित्व को न माने बल्कि वह होता है जो किसी वर्ग विशेष के वर्चस्व और उसके प्रतीक और केन्द्र बिन्दुओं को न माने।, उस प्रतीक-गिर्द धार्मिक नियमों और कर्म कांड का प्रपंच तैयार कर लिया जाता है। ताकि वर्ग-विशेष को सतत् संघर्ष के लिए तैयार रखा जा सके।

भिन्न-भिन्न युगों में वर्ग-संघर्ष के कारण नये-नये योद्धा और युक्तियां बनाने में प्रसिद्ध व्यक्ति भविष्य के लोगों के लिए आदर्श के रूप में उभरते रहे। उनके द्वारा इस वर्ग व्यवस्थाओं को मजबूत करने और उसकी रक्षा करने के कारण उन्हें सर्वशक्तिमान के रूप में याद किया जाने लगा। ऐसे व्यक्तित्वों को ही किसी समय समाज के कथाकथित नेताओं ने भिन्न-भिन्न युगों के अवतारों का दर्जा दे दिया। इन ऐतिहासिक घटनाओं के कारण भगवान विष्णु के अवतारों की कहानियां कल्पित कर ली गईं।

एक और दृष्टि से देखा जाये, तो पुराण कथाओं के अनुसार ब्रह्मा को सदैव गोरे वर्ण का दिखाया गया है, विष्णु को नीले वर्ण का और शिव को काले वर्ण का दिखाया गया है। इस दृष्टि से भी एक बात की पुष्टि होती नजर आती है कि ब्रह्मा ब्राह्मणों के मुख्य देवता हैं, और विष्णु क्षत्रियों के और शिव रुद्र अन्य वर्गों के मुख्य देवता हैं।

ऐसा भी लगता है कि आरम्भ में समाज के चार वर्ण नहीं थे बल्कि तीन थे अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और शेष जिन्हें विश-धातु से व्युत्पन्न "वैश्य" वर्ण को दो भागों में बाँटकर बनाया गया था, जिनमें से उस भाग को दास अथवा शूद्र बना दिया गया था, जो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्गों के वर्चस्व के लिए कोई खतरा नहीं था।

वर्ण-व्यवस्था या रंगभेद

वर्ण और रंग की दृष्टि से देखा जाए, तो 4 वर्णों की बात बहुत युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती और समाज को दो वर्गों में बांटा जा सकता है अर्थात् गोर-वर्ण और कृष्ण-वर्ण अथवा गोरे और काले लोग। इस प्रकार से गोरों के मुख्य देवता

को भगवान ब्रह्मा कहा जा सकता है। और काले लोगों के मुख्य देवता को भगवान शिव कहा जा सकता है। भारतवर्ष में जबसे आर्य लोगों का प्रभुत्व स्थापित हुआ, उस समय से गौर-वर्ण आर्यों ने काले रंग के अनार्यों को अपने शत्रु अथवा काल विरोधियों के रूप में मानना आरम्भ कर दिया था और इसलिए भगवान शिव को काल और महाकाल माना गया था। कहना न होगा कि भिन्न-भिन्न वर्णों के लोग अपने देवताओं को अपने रंग का ही बना लेते हैं। इसी कारण गोरे आर्यों ने अपने मुख्य देवता को अथवा अन्य देवताओं को गोरे रंग का बनाया है और काले लोगों ने अपने मुख्य देवता को काले रंग का बनाया है।

शोषक और शोषित

पुराने जमाने में राजनीतिज्ञों और शासकों को सामान्य जनता के ऊपर ही शासन करना होता था। इस प्रकार सामान्य जनता का शोषण होता था। अपने भोलेपन के कारण उसका शोषण आसानी से होता रहता था। अति होने पर वह जनता क्रोधित भी हो उठती थी और रुद्र-रूप धारण कर लेती थी। ऐसी घटनाएं भी इतिहास में बार-बार दोहराई गई हैं।

वर्ण की दृष्टि से अलग-अलग वर्णों के अलग-अलग कर्तव्य हैं और आश्रम व्यवस्था के माध्यम से कर्तव्यों और अधिकारों को शाश्वत दर्जा देने का प्रयास किया गया है और इसी मन्तव्य की प्राप्ति के उद्देश्य से सभी धार्मिक ग्रन्थों, पुराण कथाओं, तर्क शास्त्रों और धार्मिक संस्थाओं की उत्पत्ति एक सोची-समझी योजना के अधीन की गयी है।

नये वर्ण का नया जन्म और द्विज

ऊपर संकेत किया गया है कि शूद्रों से अलग किए गए ऐसे वर्ग को वैश्य कहा गया है या कहा गया था, जो शूद्रों के विरुद्ध और ब्राह्मण-क्षत्रिय के समर्थन में कुछ भी करने को तैयार हो गया था। निस्संदेह इस नए वर्ग को कुछ नए अधिकार दिये होंगे जिनके कारण इस वर्ग ने अपनी कायाकल्प ही समझी होगी और इसी कारण से अपना नया अथवा दूसरा जन्म हुआ माना होगा। वैश्य वर्ग से पहले बने क्षत्रिय वर्ग की स्थिति भी ऐसी ही रही थी और इसलिए उस पर द्विज की परिभाषा लागू होती थी। चूंकि ये दोनों वर्ग ब्राह्मण वर्ग ने अपने हितों की रक्षा के लिए अपने साथ मिला लिए थे, वह वर्ग स्वयं को किसी-न-किसी प्रकार से इन दो वर्गों के समान ही सिद्ध करना चाहता था, इसलिए उस वर्ग

ने भी अपने आप को द्विज की परिभाषा में लाना उपयुक्त समझा और इन तीनों वर्गों को एकत्र करके 'द्विज' की संज्ञा दे दी गई।

इसका मुख्य अभिप्राय शूद्रों को अपने से भिन्न दर्शाना था। ऐसा करने के लिए एक विशेष युक्ति की व्यवस्था का अनुभव किया गया। इस सम्बन्ध में जो युक्ति अपनाई गई, वह इन तीनों वर्गों के विशिष्ट प्रशिक्षण से सम्बन्धित बनाई गई। उसका नाम यज्ञोपवीत यश उपनयन संस्कार किया गया जिसके माध्यम से अपने विश्वस्त साथियों और उनकी संतानों की पहचान और विश्वास के अयोग्य व्यक्तियों और उनकी संतानों की छंटनी का सिलसिला जारी किया गया। निस्संदेह इस व्यवस्था पर सभी संबंधित के ध्यान को केन्द्रित होने का डर था, इसलिए इस केन्द्र-बिन्दु को छुपाने के विचार से कई अन्य संस्कारों की कल्पना की गई।

विरोधी भी अवतार

दूसरी ओर व्यवस्था को भिन्न-भिन्न युगों में बनाये रखने के लिए समय-समय पर नये योद्धा और युक्ति में पारंगत व्यक्ति उभरते रहे हैं। ऐसे व्यक्ति काफी समय तक व्यवस्था के चालकों और समर्थकों के आदर्श बने रहे। किसी समय इन आदर्शों की सूची बना ली गयी और सूची में अंकित व्यक्तियों को व्यवस्था के मुख्य संचालक विष्णु का अवतार मान लिया गया। कभी-कभी कूटनीति के कारण अपने विरोधियों को भी अपने समर्थकों की सूची में शामिल कर लिया गया। इसका उदाहरण महात्मा बुद्ध हैं, जिनको विरोधी धर्म का स्थापक होने के बावजूद विष्णु का अवतार मान लिया गया।

वैचारिक इतिहास लिखते समय वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्तियों का जाने या अनजाने उल्लेख किया जाना स्वाभाविक है। इस उल्लेख के कारण संसार की वास्तविकता को न समझने वाले लोग पुरा-कथाओं को वास्तविक व्यक्तियों का वास्तविक इतिहास मान बैठते हैं और उसे ऐसा सिद्ध करने के लिए नये-नये ग्रंथों की रचना भी करते या करवाते रहते हैं। धार्मिक पुरा-कथाओं का उद्देश्य व्यक्तियों का वास्तविक इतिहास लिखना नहीं है, बल्कि धार्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति के विचार से आवश्यक कल्पनात्मक सामग्री का प्रयोग करके संबंधित ग्रंथों या पुरा-कथाओं को रोचक बनाना और ऊपर से तर्कसंगत दिखाना होता है।

वर्ण–व्यवस्था अथवा शासन व्यवस्था

राजनीति में पारंगत नेताओं के लिए कोई भी घटना अन्तिम नहीं होती, इसलिए उन्होंने यदि कभी अपना ह्रास, विनाश और विध्वंस भी होते देखा, तो उसको भी नये युग की शुरुआत का 'शुभ' लक्षण माना अथवा नया अवसर माना और विनाश के पश्चात वे नए सिरे से नई-व्यवस्था बनाने की आशा लेकर पुनः अपनी पुरानी विचारधारा के अनुसार कार्यवाही करने की योजना की सम्भावना को ध्यान में रखकर आश्वस्त होते रहे।

इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा सृष्टि का अर्थ हो गया शासन को हथियाने की योजना बनाना, भगवान विष्णु का अर्थ हो गया उस योजना को कार्यान्वित करके बनाये रखना और भगवान शिव का अर्थ हो गया यथासमय उस योजना को विफल करके उसका विनाश करना। यह एक प्रकार की खानाजंगी का प्रतीक है। इसमें व्यवस्था का विनाश होना और शक्ति परिवर्तन स्वाभाविक है। ऐसी अवस्था में नई योजना, उसके बनाने वाले नये लोग उसके कार्यान्वित होने पर नये विरोधी बनते रहते हैं और कालचक्र इसी तरह चलता रहता हैं। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था वास्तव में शासकों के हाथ में शासन-व्यवस्था भी है और एक विवशता भी।

यहां पर यह बात उल्लेखनीय प्रतीत होती है कि शास्त्रों में सृष्टि की रचना, पालन और उसका संहार ब्रह्मा का खेल और प्रपंच बताया गया है। शब्द-कोष में प्रपंच का अर्थ काल्पनिक बात अथवा ढोंग है।

सृष्टि के सम्बन्ध में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के प्रतीक सामाजिक और राजनीतिक प्रासंगिकता भी रखते हैं। इस प्रकार से देखा जाए तो हिन्दू धर्म में ब्रह्माण्ड को जो प्रपंच बताया गया है, वह समाज के नेताओं द्वारा समाज में फैलाये प्रपंच जैसा लगता है। इस दृष्टि से भगवान के तीनों रूपों ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सार्थकता नये प्रकार से सिद्ध होती प्रतीत होती है।

पुरा-कथा शास्त्र–धारणाओं का इतिहास

किसी भी समाज की पुराकथाएं उस समाज का सांस्कृतिक, दार्शनिक, राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से लिखा गया या बनाया गया वैचारिक इतिहास और उसके विरुद्ध प्रतिक्रियाओं का इतिहास हैं। चूंकि धरती पर मानव का अस्तित्व लाखों वर्षों से है, आने वाले युगों में प्राचीन युगों में घटी प्रत्येक घटना

के ऐतिहासिक महत्व को जानना आसान नहीं रहता। परन्तु यदि किसी समय इन पुरा-कथाओं को योजनाबद्ध ढंग से संकलित किया जाए, तो इसके पीछे संकलनकर्ताओं के उद्देश्यों की झलक सहज ही दिखाई दे जाती है। यह बात भारत में उपलब्ध पुराकथाओं पर तो साफतौर पर ही लागू होती है।

हिन्दू धर्म की पुराकथाओं को बहुत से लोग गप्प बताकर लोगों का ध्यान उनकी ओर से हटाने का प्रयत्न करते रहे हैं। वे ऐसा करते भी रहेंगे। ऐसा करने से भूतकाल में हुए शोषण के विश्लेषण की ओर ध्यान नहीं जाता और सामान्य जनता के शोषण की प्रक्रिया यथापूर्व बनी रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि जो भी व्यक्ति या समाज स्वयं को शोषण से बचाना चाहता है वह मानव के इतिहास की तह में जाकर मानव की चेष्टाओं को समझते। इसके लिए पुराकथाओं से बढ़कर कोई और सामग्री अधिक उपयोगी नहीं हो सकती। उनका पूरा लाभ उठाने के लिए सबसे पहले जिज्ञासु को अपना स्थान, अपनी आकांक्षाओं और अपनी अभिलाषाओं को समझना चाहिए। फिर पुरा-कथाओं के माध्यम से अपना प्रतीक खोजना चाहिए और फिर उस प्रतीक का औरों के प्रति और औरों का इसके प्रति व्यवहार, दृष्टिकोण और धारणाओं के प्रतीकों का अवलोकन करना चाहिए। इस दृष्टि से पुराणों में बताए गए शिव के प्रतीक हैं, सामान्य शोषित, निर्धन, अधिकार-विहीन जनता की वास्तविकताओं की ओर इशारा करते हैं और जिस व्यक्ति या समूह के पास पुरा-कथाओं की वह धरोहर है, उसका वे कथाएं शोषण की दिशा में मार्गदर्शन करती रही है।

धर्मशास्त्र और तर्क

हिन्दू धर्म के सारे पुराण भगवान ब्रह्मा, विष्णु और शिव अथवा उनके तथाकथित अवतारों से भरे हुए हैं। इस प्रकार भगवान शिव का वास्तविक महत्व दर्शाने के लिए तो जितने पुराण हैं, उनसे तीन गुणा विस्तार चाहिए। पुराणों की संख्या 72 है, जिनमें 18 महापुराण, 18 उप पुराण 18 अति पुराण और 18 लघु पुराण सम्मिलित हैं। इस दृष्टि से भगवान शिव का वास्तविक महत्व 200 से अधिक ग्रंथों में बखान किया जा सकता हैं। पता नहीं कोई व्यक्ति ऐसा करने का विचार भी मन में ला सकेगा या ऐसा कोई कर भी पायेगा या किसी को यह समाज ऐसा करने की अनुमति भी देगा। ऐसा होने देना समाज के नेताओं के लिए बड़े खतरे की बात है। ऐसा करने में तर्क को प्रधानता

मिलती है। तर्क से बुद्धि तेज होती है, बुद्धि से ज्ञान बढ़ता है, परन्तु तर्क को ही धर्म का शत्रु मानते हैं। ध्यान योग्य है कि धर्म अपने शास्त्र के समर्थन में तो तर्क का भरपूर प्रयोग करता है, परन्तु केवल अपने विरोध में तर्क को अनुमति नहीं देता।

प्रकट है कि विस्तार-भय से भगवान शिव से संबंधित किसी एक भी पौराणिक कथा का पूरा विश्लेषण यहां पर सम्भव नहीं है। इसलिए इस समय उदाहरण के लिए केवल एक ही कथा पर विश्लेषणात्मक दृष्टि डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। कथा के प्रसंग से पहले शिव के जन्म से संबंधित धारणा को जान लेना प्रासंगिक होगा।

भगवान शिव का जन्म

मैंने अपनी अनेक पुस्तकों में वर्ण की दृष्टि से भगवान ब्रह्मा को ब्राह्मण का प्रतीक सिद्ध किया है और भगवान शिव/रुद्र को सामान्य शोषित जनता का प्रतीक। इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कथा के विश्लेषण के संदर्भ में उक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखना उचित होगा। देवी-भागवत पुराण के अनुसार रुद्र की उत्पत्ति ब्रह्मा के क्रोध से हुई थी। उपर्युक्त परिभाषा के दृष्टिगत इसका यह अर्थ होगा कि ब्राह्मण अथवा जनता के नेता जब क्रोधित हो जाते हैं तो यथासमय सामान्य शोषित जनता का उग्र रूप उभरता है। इसलिए सफल नेताओं के लिए इशारा यह है कि उन्हें जनता पर अपना क्रोध नहीं जताना चाहिए। इसका सांकेतिक अर्थ यह भी हो सकता है कि यदि कोई नेताओं को क्रोधित करेगा तो उसकी स्थिति भगवान शिव जैसी अर्थात शोषित शूद्रों और अन्त्यजों जैसी बना दी जाएगी।

महाभारत (वन पर्व) के अनुसार भगवान ब्रह्मा का जन्म भगवान विष्णु की नाभि से होता है और भगवान शिव का जन्म उनकी भृकुटि से। ऐसी ही कथा देवी-भागवत पुराण में भी आती है। इससे भाव यह हो सकता है कि ब्राह्मण वर्ण ने राजघराने में आमोद-प्रमोद वाले वातावरण में जन्म लिया है और शूद्र वर्ण की उत्पत्ति या व्यवस्था के सम्बन्ध में उस पर राजा के प्रकोप के कारण हुई है। इससे भी यह संकेत मिलता है कि जब शासन अपनी भृकुटि सामान्य जनता की ओर तान लेता है, तो उस सामान्य जनता में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति जन्म ले लेती है।

भगवान शिव के प्रतीक और सामान्य जनता

उपर्युक्त पौराणिक कथनों की पृष्ठभूमि में भगवान शिव की प्रवृत्ति को समझना होगा। इसका इशारा दक्ष के यज्ञ के विध्वंस वाली कहानी के सम्बन्ध में किया जा चुका है, जिसमें दक्ष द्वारा अपनी पुत्री "सती" को भगवान शिव के अवगुण बताकर उसके मन को भगवान शिव से हटाने का प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि वे अवगुण ही भगवान शिव के प्रतीकों में सम्मिलित हैं। उपर्युक्त अवगुणों के अतिरिक्त उनके कुछ और भी प्रतीक हैं जैसे कि उनका रूप रुद्र है, वे रंग के काले हैं, उनकी पत्नी काली है, उनका सामान्य निवास-स्थान श्मशान घाट है, उनके गले में हमेशा सांप रहते हैं और वे सवारी के लिए बैल का प्रयोग करते हैं। उन्हें पशुपति और भूतनाथ भी कहा जाता है। ये सारे प्रतीक भोली, निर्धन, अधिकार-विहीन, शोषित और पीड़ित सामान्य जनता की कहानी कहते हुए प्रतीत होते हैं। इसलिए सामान्य जनता और भगवान शिव के प्रतीकों की समानता के सम्बन्ध में कुछ उदाहरण देखें :

- भगवान शिव का सामान्य रूप रुद्र है, तो सामान्य जनता अपनी दयनीय स्थिति के कारण कुढ़ती रह कर क्रोधी रहती है।
- भगवान शिव काले हैं, तो सामान्य जनता अधिकतर काली है।
- भगवान शिव की पत्नी काली है तो सामान्य-जन की पत्नी भी काली या असुन्दर होती है। इसी प्रकार महा-शिव की पत्नी महाकाली है।
- भगवान शिव का स्थान श्मशान घाट है तो जनता का शोषित वर्ग श्मशान घाट के समीप ही रहता है और सामान्य जन के शोषित व्यक्ति को अपने विरोधियों के हाथों मरने का या श्मशान घाट भेज दिये जाने का डर बना रहता है।
- भगवान शिव के पास तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं है तो शोषित वर्ग की भी लगभग यही कहानी है।
- भगवान शिव के गले में साँप रहता है, तो शोषित समाज के गले में भी अनेक प्रकार के साँप रहते हैं, जो उसके खिलाफ चुगली करने वालों, घर के भेदियों और विरोधियों के एजेंटों की शक्ल में सदा उसके गले में पड़े रहते हैं अर्थात् उनके हाथों उसके जीवन को खतरा बना रहता है और उनके घर से उनके अपने लोग भी समीप आने में डरते हैं।
- भगवान शिव की सवारी बैल है, तो शोषित वर्ग के पास भी

अधिक-से-अधिक बैल ही हो सकते हैं, क्योंकि उसके पास हाथी और घोड़े तो हो नहीं सकते।

- भगवान शिव पशुपति हैं, तो शोषित वर्ग का मुख्य कर्तव्य पशुओं की देखभाल करना और पशुओं से घिरा रहना है। और अधिक-से-अधिक उनके पास पशुधन ही हो सकता है।
- भगवान शिव भूतनाथ हैं, तो शोषित वर्ग के लोग भी ऊपर वालों की दृष्टि में भूतों जैसे काले कलूटे और डरावने ही होते हैं।
- भगवान शिव का हथियार त्रिशूल है, जो न तो बाण या आधुनिक बन्दूक की तरह से दूर तक मार सकता है, न ही तलवार की तरह अधिक घातक है।
- भगवान शिव का एक प्रतीक उनकी आंख तीसरी है, जिसके खुलने पर शिव प्रलयंकारी तांडव-नृत्य आरम्भ कर देते हैं। यह तीसरी आंख शोषित जनता की अन्तरात्मा का संकेत देती है। जब शोषित जनता अपनी दोनों आँखें बन्द करके अन्तरात्मा में झांककर देखती है, तो वह अपने शोषकों की चालें देखकर क्रोध से लाल होकर तोड़-फोड़ के विध्वंसक कार्य में लग जाती है। इसी कार्य को भगवान शिव का तांडव-नृत्य कहा जाता है।
- भगवान शिव का एक प्रतीक डमरू है। यह अतिनिर्धन प्राणी का वाद्य है। उत्तरी भारत में एक विशेष जाति के लोग गूगा पीर मांगने के सम्बन्ध में डमरू का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार डमरू भी भगवान शिव को पीड़ित, शोषित, निर्धन, निरक्षर और तिरस्कृत वर्ग के साथ जोड़ देता है। सम्पन्न लोग कों का वाद्य नहीं है।

भगवान शिव का विषपान

भगवान शिव को नीलकण्ठ भी कहते हैं। समुद्र-मंथन की कहानी के अनुसार भगवान शिव का कण्ठ विषपान के कारण नीला हो गया था, परन्तु कम्ब रामायण में इसका कारण कुछ विस्तारपूर्वक से दिया गया है। उसके अनुसार जब शिव ने विष को कण्ठ में रख लिया, तो पार्वती ने शिव के कण्ठ को दबा लिया, ताकि विष शिव के कण्ठ से नीचे न उतरे और विष्णु ने अपने हाथों से उनका मुख दबा लिया ताकि विष मुख से बाहर न निकले। वैचारिक दृष्टि से देखा जाये, तो यह किसी भले और भोले व्यक्ति को उसकी तथाकथित पत्नी की

सहायता से उसके शत्रु द्वारा गला घोंट कर मार देने की प्रक्रिया जैसी लगती है। सामाजिक दृष्टि से देखें तो यह बात व्यवहारिक-सी लगती है। शोषित जनता, जिसकी प्रतीक पीड़ित और परिगणित जातियां हैं, परम्परा के अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग द्वारा मारी जाती रही है का यह केवल संयोग है कि इस कथा की पार्वती ब्रह्म-कुल से है और विष्णु क्षत्रिय-कुल से हैं?

पुराणों की समुद्र-मन्थन की कहानी के अनुसार भगवान शिव विषपान करके भगवान ब्रह्मा, विष्णु एवं देवताओं और असुरों को बचाते हैं। यह विष समाज में फैले उस विष का प्रतीक है, जिससे समाज के नेताओं, शासकों और उन द्वारा बनाई गई व्यवस्था को खतरा उत्पन्न हो जाता है। उस खतरे से बचने के लिए सामान्यतः सामान्य जनता से उभरे भले और भोले नेता को थोड़े प्रलोभन देकर सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने के लिए तैयार कर लिया जाता है। यह काम बड़े सस्ते में हो जाता है। जैसे कि भगवान शिव को "काली" के अतिरिक्त एक "गौरी" पत्नी मिल गयी थी, उनका निवास-स्थान श्मशान घाट की बजाय कैलाश पर्वत पर स्थानान्तरित हो गया था और सवारी के लिए उन्हें हाथी-घोड़े की बजाए नन्दी बैल मिल गया था। परन्तु बदले में उन्हें अपने गले में सांप और नरमुंडमाला डालने पड़े थे।

शिव-विष्णु युद्ध

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में एक कथा है, जिसके अनुसार देवता लोग "जो कि शास्त्रीय दृष्टि से ब्राह्मणों और ब्रह्मा के प्रतीक हैं" यह परीक्षण करने का विचार कर बैठे कि भगवान विष्णु और शिव में अधिक शक्तिशाली कौन है। शायद भविष्य की कोई योजना बनाने के लिए वे ऐसा कर रहे थे। देवताओं ने अपना विचार भगवान ब्रह्मा के सामने व्यक्त किया, जिनकी स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस पर देवताओं ने दोनों पक्षों के प्रति मित्रता का नाटक करके और इधर-उधर की बातें बना कर भगवान विष्णु और भगवान शिव में युद्ध करवा दिया। लड़ाई को खतरनाक बनाने के लिए भगवान विश्वकर्मा से देवताओं ने दोनों के लिए अलग-अलग धनुष बनवा दिए। भगवान शिव के हारने के पश्चात् उनका धनुष विदेहराज के महल में रखवा दिया गया। यह वही धनुष था, जो सीता-स्वयंवर के समय भगवान राम ने तोड़ा था। भगवान विष्णु ने अपना धनुष पृतीक मुनि को दे दिया जिसने उसको जमदग्नि को दे दिया। वही धनुष जमदग्नि से परशुराम को मिला।

युद्ध के समाप्त होते ही देवताओं ने जान लिया कि भगवान विष्णु ही शिव से शक्तिशाली हैं। परशुराम ने भगवान विष्णु के इसी धनुष की सहायता से रामायण के "राम" द्वारा शिव-धनुष तोड़ने पर राम को ललकारा था, परन्तु बाद में वे "परशुराम" वापिस चले गये थे।

उपर्युक्त कथा में लड़ाई के पश्चात् भगवान शिव का धनुष विदेहराज के पास केवल धरोहर के रूप में रख दिया गया था, परन्तु प्रयोग के लिए नहीं। उधर भगवान विष्णु का धनुष ब्राह्मणों ने ले लिया था। इस प्रकार ब्राह्मण देवता धार्मिक नेता होने के साथ-साथ धनुषधारी धर्म (परशुराम) भी बन गये, परन्तु उन्हें इस बात पर ऐतराज नहीं हुआ कि क्षत्रिय (राम) उसी प्रकार के धनुष को छुएं भी। विदेहराज का सन्दर्भ भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। विदेह के सम्बन्ध में राजा जनक का नाम सर्वप्रसिद्ध है। वे राजा होते हुए भी धर्म-सभा किया करते थे और इस प्रकार स्वयं ही ब्राह्मण बन बैठे थे। इस पर ब्राह्मणों को आपत्ति तो थी, परन्तु वे कुछ कर नहीं सकते थे। चूंकि भगवान शिव शोषित जनता के प्रतीक हैं, इस पृष्ठभूमि में विदेहराज भी शोषण के विरोधी प्रतीत होते हैं। इस पृष्ठभूमि में भगवान विष्णु "सामान्य क्षत्रियों" की शक्ति ब्राह्मणों के पास चली गई, परन्तु जो विवेकशील क्षत्रिय (जनक) थे, उनको शोषित जनता का विश्वास प्राप्त हो गया। इसी कारण परशुराम (ब्राह्मण) और राम (क्षत्रिय) में उपर्युक्त भिड़न्त हो गयी जिसमें स्थिति की गम्भीरता को देखकर और अपना पक्ष कमजोर जानकर परशुराम ने वहां से पीछे हट जाना ही श्रेयस्कर समझा।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो वैदिक धर्म के ह्रास के पश्चात् शूद्रों की सहायता से क्षत्रियों द्वारा बौद्ध धर्म की उत्पत्ति की कथा को उपर्युक्त पौराणिक कथा प्रतीकात्मक ढंग से कहती हुई प्रतीत होती है।

भगवान शिव और उनकी तलवार "जिन"

इस निष्कर्ष की पुष्टि एक अन्य कथा से होती है, जो महाभारत के शान्ति पर्व में इस प्रकार दी गई है। भगवान शिव ने एक तलवार असुरों की समाप्ति हेतु धारण की हुई है। इस तलवार की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि जब ब्रह्मा ने संसार बनाया तो सदाचार के नियम भी बनाये। परन्तु महर्षियों ने सोचा कि असुरों को नियन्त्रण में रखने के लिए केवल सदाचार के नियम ही काफी नहीं होंगे, उनके साथ-साथ कोई और व्यवस्था भी होनी चाहिए। इस उद्देश्य से उन्होंने हिमालय में एक ब्रह्म-यज्ञ किया। यज्ञ-वेदी से एक भयानक "जिन"

की उत्पत्ति हुई। उस "जिन" की उत्पत्ति के साथ ही पृथ्वी हिल गई, समुद्रों में तूफान आ गया और आकाश में बिजलियां चमकने लगी। फलस्वरूप महर्षिगण घबरा उठे। उनहें सान्त्वना देने के लिए उनके पास स्वयं ब्रह्मा ने बताया कि इसे वे "जिन" न समझें, बल्कि असुरों को मारने के लिए केवल एक तलवार ही समझें। इस तलवार को भगवान शिव ने अपने हाथ में ले लिया। इस पर शिव का मस्तक सूर्य से छू गया और उनके मुख से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी। उन्होंने अनेक रूप धारण कर लिए और शरीर पर मृग-छाल लपेट ली तथा मस्तक पर तीसरा नेत्र धारण कर लिया। इस प्रकार भगवान शिव धरती पर विचरने लगे और सभी असुरों का संहार कर दिया। सभी असुरों का सफाया हो जाने पर देवताओं की विजय हुई।

इससे यह तो स्पष्ट ही है कि इस कथा में शूद्रों के स्वामी शिव द्वारा ही असुरों का सफाया किया गया बताया जाता है। वैचारिक दृष्टि से देवता शासक वर्ग के नेता होते हैं और असुर विरोधी वर्ग के नेता होते हैं। इस प्रकार से इतिहास में मुख्य विरोध ब्राह्मणों का विरोध सामान्य जनता अथवा शूद्रों से रहा है। और वे स्वयं को देवता और अपने विरोधियों के नेताओं को असुर कहते रहे हैं। वास्तव में देवता और असुर सामान्य जनता पर नियंत्रण के सम्बन्ध में आपस में लड़ने वाले दो समूहों के प्रतीक हैं, जिनके सदस्य किसी भी वर्ग से उभर सकते हैं। सफल समूह जिसको सत्ता सौंप दे वह क्षत्रिय हो जाता है और जिसको अन्यथा लाभ पहुंचा दे वह व्यक्ति वैश्य हो जाता है और जो शेष बचे वे फिर शूद्र या पीड़ित रह जाते हैं। विरोध के उभरने पर विरोधियों के अपने ही किसी नेता को अपनी ओर करके उनका सफाया करा देने की पुरानी कहानी है। यह तथ्य उपर्युक्त कहानी से उजागर होता है। इस कहानी में इस प्रकार सामान्य जन के नेता द्वारा अपने ही साथी नेताओं का वध कराया गया है और इसमें "जिन" को माध्यम बनाया गया है।

क्षत्रिय-शूद्र सामीप्य

उक्त कहानी से स्पष्ट है कि उस समय ब्राह्मणों और क्षत्रियों में पारस्परिक विरोध उत्पन्न हो गया था। ऐसी स्थिति में ब्राह्मणों ने अपने ब्राह्मण-धर्म के साथ साथ हथियार भी उठा लिए थे जिसका उदाहरण परशुराम हैं। कहीं कहीं वे सत्ता हथिया कर राज भी स्वयं ही बन बैठे थे जिसका उदाहरण प्राक् ऐतिहासिक रावण और ऐतिहासिक पुष्य मित्र, शुंग, कण्व, पाल और सेन वंश है। दूसरी

ओर क्षत्रियों ने अपनी राज-सत्ता के साथ ब्राह्मण-कर्म भी अपना लिया था। जिसके प्रागैतिहासिक उदाहरण विश्वामित्र और विदेहराज जनक है। इसका परिणाम यह हुआ कि उन क्षत्रियों की प्रवृत्ति युद्ध में नहीं रही। उधर शूद्रों के प्रतीक शिव की पराजय युद्धप्रिय क्षत्रियों के प्रतीक विष्णु के हाथों हो गई। शत्रु का शत्रु मित्र होता है। इस लिए शिव और जनक मित्र हो गए और शिव का धनुष विदेहराज के पास रख लिया गया। इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि किसी सोची समझी योजना के अधीन शिव अथवा शूद्रों, आर्य-विरोधियों या ब्राह्मण- विरोधी अन्य वर्गों को शस्त्र-विहीन कर दिया गया अर्थात उनसे हथियार गिरवा लिए गए। ब्राह्मण-वर्ग के राजा बन जाने के पीछे यह बड़ी सफल युक्ति थी कि कुछ क्षत्रिय युद्ध करना छोड़ जाए और शूद्रों के हथियार जमा करा लिए जाए।

शिव, शूद्र और बौद्ध

इतिहास के झरोखे से इस कथा पर दृष्टिपात करें तो ऐसा दिखाई देगा कि ब्राह्मण-धर्म-वैदिक धर्म है। इसका सफाया बौद्ध-धर्म ने कर दिया था जिसका जन्म क्षत्रिय घराने में हुआ था। इस धर्म के अधिकतर अनुयायी शूद्र वर्ग के लोग अर्थात सामान्य जन ही थे। फलस्वरूप महर्षिगण अर्थात वैदिक-धर्म के नेता घबरा गए। उन्होंने हिमालय में जाकर शरण ले ली। वहां पर एक ब्रह्म-यज्ञ किया अर्थात ब्राह्मणों की एक विशाल सभा बुलाई। हिमालय की गोद में एक अन्य शक्तिशाली शक्ति "जिन" के नाम से उभरी जो बाद में जैन धर्म के नाम से विख्यात हुई और जिसने बौद्ध-धर्म से अलग धर्म स्थापित कर लिया जिनके आचार्य भी ब्राह्मण विरोधी अर्थात देवता-विरोधी और वेद विरोधी थे। ब्राह्मण नेताओं ने ऐसी युक्ति से काम लिया कि "जिन" को बौद्ध नामक असुरों के विरुद्ध उकसा दिया। फलस्वरूप एक लम्बा संघर्ष चल पड़ा। इसमें तलवारों का प्रयोग हुआ, और एक दूसरे की बस्तियों को जलने के लिए अग्नि का भी। ब्राह्मण नेताओं अर्थात महर्षियों को उनके नेता ब्राह्म ने एक तलवार अर्थात आयुध के रूप में प्रयोग करने की युक्ति बताई। इस युक्ति में ब्राह्मणों के प्रबल विरोधी बौद्धों का सफाया हो गया और "जिन" के अनुयायी एक छोटा सा सम्प्रदाय बन कर रह गए। परन्तु वास्तविक विजय देवों, ब्राह्मणों अथवा वैदिक-धर्म की हुई। इस कहानी में वैदिग धर्म के पुनरुत्थान की वास्तविकता काल्पनिक पौराणिक कथा के माध्यम से दर्शाई गई है। कथा में स्पष्ट संकेत है कि शिव

अर्थात सामान्य जनता के हाथ में "जिन" नाम की तलवार दे दी गई। इस "कल्याणकारी" कार्य के कारण "रुद्र" को "शिव" कहा जाता है। इसी कारण से उसका स्थान बस्ती के श्मशानघाट से हटा कर अपने महलों के नजदीक अर्थात हिमालय में कैलाश की चोटी पर स्थानांतरित कर दिया गया और इनाम के रूप में दक्ष की पुत्री अथवा ब्रह्मा की पौत्री "गौरी" का विवाह, उनके काला होने के बावजूद उनसे करा दिया गया।

वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता

इस विश्लेषण में कुछ स्पष्ट संकेत भविष्य के लिये मिल सकते है। समाज में वर्ग-संघर्ष चलता रहा है, चलता है और चलता रहेगा। संघर्ष के फलस्वरूप सत्ता भिन्न-भिन्न हाथों में जाती रहती है। परन्तु सत्ता को हथियाने और उसे संभाले रखने के नियम शाश्वत है। इस संघर्ष में वर्ग सदैव चार ही रहते है परन्तु उनके अनुयायी या सदस्य बदलते भी रहते हैं और किसी समूह विशेष की कूटनीति अधिक सबल हो तो वे बड़ी देर तक भी शक्ति के मालिक बने रह सकते है। ये चार वर्ग इस प्रकार है :—

- पहला वर्ग समाज को नीति और दिशा देने वालों का है। उन्हें राजनीतिज्ञ या ब्राह्मण कहा जा सकता है।
- दूसरा वर्ग इन नीति को कर्तव्य-निष्ठा की भावना कार्यन्वित करने वालों का है। उसे सरकारी तन्त्र या क्षत्रिय कहा जा सकता है।
- तीसरा वर्ग संघर्ण का लाभ उठाने वालों का है। उनको परमिट, कोटा, लाइसेन्स आदि का लाभ उठाने वाला या वैश्य कहा जा सकता है।
- चौथा वर्ग सामान्य जनता का है जिस पर राजनीतिज्ञ शासन करता है। सरकारी वर्ग पनपता है, जिसका लाभ परमिट, कोटा पाने वाले लोग उठाते हैं। और स्वयं शोषण का शिकार बना रह कर निरक्षरता निर्धनता और अनधिकार की चक्की में पिसता रहता है इसी को शूद्र वर्ग भी कहा सकते है।

यदि इन वर्गों को जन्म से सम्बन्धित माना जाए तो यही वर्ण और जातियां बन जाते हैं, अन्यथा पाश्चात्य देशों के समान व्यक्ति-विशेष के दर्जे के अनुसार

ये वर्ग ही बने रहते है और इनके सदस्य बदलते रह सकते है।

ब्रह्मा और विष्णु के समर्थक शिव

नीति-निर्धारण करने वाले स्वयं को ब्रह्मा का प्रतीक मान सकते हैं। नीति का संचालन करने वाले विष्णु का और जिन पर नीति चलती है उनको शूद्र का प्रतीक माना जा सकता है। 'रुद्रों' में से जो 'ब्रह्मा' व 'विष्णु' का साथ देने को तत्पर हो जाएं उनको 'शिव' माना जा सकता है।

इन अर्थों में शिव आम जनता के प्रतीक होकर भी ब्रह्मा और विष्णु की युक्ति में फंसकर आम जनता के शुभचिन्तकों को असुर की संज्ञा देकर उन्हें मारने पर तत्पर हो जाते हैं मारने के लिए वही रुद्र-रूप धारण कर सकते हैं। वही संहार कर सकते हैं। इसलिए उन्हीं की पूजा होती हैं। शिव न केवल असुरों का संहार कर सकते हैं, बल्कि वे ब्रह्मा और विष्णु का भी संहार करने में सक्षम हैं। इसलिए वे दोनों शिव को किसी न किसी चक्र में फंसाकर भोलानाथ बनाये रखते हैं। यदि वे फिर भी उग्र रूप धारण करें, तो समाज में उभरते विष का पान वे उन्हीं को करा देते हैं। उस विष के नशे में शिव अचेत से रहते हैं और ब्रह्मा और विष्णु का आधिपत्य बना रहता हैं। इसमें भी ब्रह्मा सदैव एक ही स्थान पर बने रहते हैं और जब-जब जहां-जहां उत्पात होता है, वहीं पर विष्णु के किसी-न-किसी अवतार को भेज दिया जाता है। विष्णु के अवतार का एकमात्र कार्य ब्रह्मा और देवताओं के विरोधियों को मारना होता है, चाहे वे नैतिक दृष्टि से भले लोग हों या बुरे लोग हों।

शक्ति की पूजा

प्रकटतः भगवान शिव वेदों के रुद्र के परिवर्तित रूप में उभरे हैं। उभर कर उन्होंने भगवान ब्रह्मा और भगवान विष्णु को अप्रासंगिक-सा बना दिया। भारतवर्ष में मन्दिर बनाने की होड़ युगों से चली आ रही है। इस होड़ में भगवान ब्रह्मा बिल्कुल ही पिछड़ गए, परन्तु भगवान विष्णु अपनी नीति बदल कर भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न अवतारों की सहायता से अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल हो पाए हैं। लेकिन भगवान शिव की शक्ति के सामने दोनों ही नहीं टिक पाए हैं। हिन्दू धर्म का शायद ही कोई ग्राम या नगर की कोई बस्ती होगी, जहां शिव और शक्ति की उपासना स्वतंत्र रूप में या अन्य सहयोगियों के रूप में नहीं हो रही हो। यह वास्तविकता गहरी खोज का विषय है।

जनसमूह–शक्ति का भण्डार

यह शक्ति कोई दैवी नहीं है बल्कि सीधी-सादी ताकत है। इससे संकेत यह मिलता है कि यदि ताकत (शक्ति) हाथ में है, तो फिर किसी अन्य देवी और देवता की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार शक्ति का ध्यान सदा शक्ति बढ़ाने पर ही रहना चाहिए। किसी भी देश का विशाल जनसमूह वास्तविक शक्ति का भण्डार है, इसलिए कुछ वर्ग उसका शोषण करने को प्रेरित रहते हैं। समूह का प्रत्येक व्यक्ति यदि स्वयं को समूह का अंग समझे, तो शोषण की प्रवृत्ति रुक जाती है, यदि वह स्वयं को अकेला समझे तो वह शोषण का शिकार हो जाता है। इस दृष्टि से मनुष्य स्वयं ही अपने शोषण का कारण है। यदि वह स्वयं को अकेला समझे, तो वह बहुत कमजोर है और स्वयं को समूह का अंग समझे तो वह बहुत मजबूत और शक्तिशाली है। इस प्रकार मनुष्य की कमजोरी और शक्ति, विकास और ह्रास सब उसके अपने हाथों में हैं। किसी और को अपनी समस्याओं का दोषी ठहराना फिजूल है, क्योंकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति बिल्कुल एक जैसी है। अन्तर है तो विवेक का, समझ का। मनुष्य में समझ है तो उसमें शक्ति है। इसलिए स्वयं को, समाज को, देश को, काल को और परिस्थितियों को समझना ही आवश्यक है। यदि ऐसा किया जाए तो यह देश, काल और ये परिस्थितियाँ सब मनुष्य की सहायक हैं अन्यथा ये सब उसके शत्रु है। मनुष्य इन्हें समझकर अपने अनुकूल बना सकता है। शक्ति मनुष्य के चारों ओर बिखरी पड़ी है, उसे केवल पहचानना है।

प्रत्येक मनुष्य अपना ब्रह्मा, विष्णु और शिव

इस संदर्भ में यह ध्यान योग्य है कि उस प्रत्येक व्यक्ति या समूह को ब्रह्मा कहा जा सकता है, जो किसी भी नई वस्तु, भाव, विचार या सिद्धान्त को जन्म देता है। इस प्रत्येक व्यक्ति को विष्णु कहा जा सकता है, जो उस वस्तु या भाव आदि को जीवित रखे हुए है और उस प्रत्येक व्यक्ति आदि को रुद्र कहा जा सकता है जो उस वस्तु या भाव आदि के कारण पीड़ित होकर और क्रोधित होकर अपना विरोध प्रकट करता है। इसी प्रकार उस व्यक्ति को शिव कहा जा सकता है जो किसी प्रकार समझाने-बुझाने से या प्रलोभन में आकर अपना क्रोध शान्त करके किसी वस्तु और भाव आदि के संबंध में अपना विरोध समाप्त कर देता है। परन्तु यह भी सत्य है कि किसी-न-किसी दिन प्रत्येक वस्तु और

भाव की समाप्ति और विलय होना ही है। उसी समाप्ति और विलय का नाम अन्ततः शिव, काल और महाकाल है। यह एक वास्तविता है जो न केवल भारत या हिन्दू धर्म पर लागू है बल्कि सभी धर्मों पर भी लागू होती है। सृष्टि मे शून्यता भी है और प्रत्येक शून्य स्थान को आवृत करने के लिए कुछ न कुछ नया पदार्थ या भाव उस शून्यता को भरने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है।

भागवान शिव के सन्दर्भ में हिन्दु धर्म के त्रिमूर्ति वर्णाश्रम धर्म और ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्दों का प्रयोग अनीवार्य रूप में हुआ है। आज के हिन्दु धार्मिक विद्वान समाजशास्त्री, विचारक और सुधारक सभी यह समझाते हैं कि हिन्दु धर्म सर्वथा वैज्ञानिक धर्म है, वर्ण जन्म से सिद्ध नहीं होता बल्कि कर्म से होता है, मानव स्वयं ही भगवान है और सभी देवी देवता मानव के शरीर और मन में विद्यामान है। इस लेख में जो उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग हुआ है वे उसी व्यापक पृष्ठ-भूमि में किया गया है। वैचारिक दृष्टि से शास्त्रों के नियमों के अनुसार कोई विशेष जाति-समूह किसी भी वर्ण में रखे जाने के योग्य नहीं है। और अपने जीवन की वास्तविक स्थिति में वह किसी न किसी वर्ण की परिभाषा में जाता रहता है और जब जब वे स्थितियां बदलती है तो उसकी वर्ण संबन्धी परिभाषा भी बदल जाती है। इसी तथ्य के दृष्टिगत इस लेख में किसी न किसी जाति-विशेष या जाति समूह के ऊपर न तो कटाक्ष का भाव है और न ही किसी की प्रशंसा का।

मत-मतान्तर

भगवान शिव आरम्भ में अनार्य देवता होने में शायद ही किसी को सन्देह हो। वर्णव्यवस्था नामक वर्ण-भेद या रंगभेद नीति के बावजूद काले रंग के भगवान शिव और काली (शक्ति) किस प्रकार न केवल अपना अस्तित्व बचा पाए बल्कि लगातार अपना विकास भी कर पाए है ? क्या वह आश्चर्यजनक नहीं कि जिन देवों और देवियों की पूजा हिन्दु धर्म में हो रही है वे मुख्यतः काले और नीले है अथवा गोरे नहीं है? गोरे आर्यों की वर्ण-व्यवस्था के बावजूद यह कैसे हो पाया ? निश्चय ही यह धर्म अर्थात की कड़े नियमों और युक्तियों से हुआ है जिन्हें प्रत्येक युग की प्रत्येक पीढ़ी अपनी सुविधानुसार बदलती रही है जिसके फलस्वरूप नये धर्म, नये मत-मतान्तर और नये समन्वय उभरते रहे है।

नेताओं का बन्धन

ऐसी दशा में अधिक जनसंख्या की भावनाओं और रंग की अनदेखी नहीं की जा सकती। इसलिए भगवान शिव और भगवती काली को चाहे प्राचीन आर्यों एवं ब्रहमा के प्रतिनिधियों ने अपनी ओर कर लिया परन्तु वे उनका रंग रूप और उनके प्रति छिपी हुई भावनाओं को नहीं बदल पाए है। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान शिव और भगवती काली का उत्थान और पतन की कहानी सामान्य काली जनता के प्रतीक शूद्र और सामान्य जनता के प्रतिनिधि उनके शोषकों और पीड़कों की ओर चले गए है और सामान्य जनता नेताविहीन बन कर शोषण की अधिक शिकार हो गई है।

क्या ऐसे में वह युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि सामान्य जनता अपने देवी नेताओं को बन्धन-मुक्त कर और उन्हें अपना नेतृत्व ठीक प्रकार से सौप कर स्वयं को बन्धन-मुक्त कराने का प्रयत्न करे ? यदि भगवान शिव को अपना मित्र बनाना है तो जनता को शिव को अपना रूप समझना होगा। अन्यथा भगवान शिव का प्रभाव उनके लिए अमैत्री-पूर्ण ही रहेगा।

प्रचीन ग्रन्थों में अंकित विचार-पद्धतियां—समाज की धरोहर

विचार और पद्धतियां सारे समाज की धरोहर हैं। यह संसार विस्तृत होने के बावजूद वैचारिक दृष्टि से छोटा सा ही रहा है। इसलिए प्रत्येक विचार का प्रभाव प्रत्येक काल में प्रत्येक देश और समाज पर रहा है और उन्हें किसी न किसी प्रकार से अपनाया भी जाता रहा है। इस दृष्टि से ब्रहमा, विष्णु रूद्र और शिव और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि शब्द भिन्न-भिन्न विचार-पद्धतियों के प्रतीक है और रहेंगे। ये शब्द भिन्न विचार-पद्धितियों की सीमाए निर्धारित करते है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रकृति और विवेक के अनुसार इन विचारों का ग्रहण करने या इनका त्याग करने में स्वतंत्र है। इसी स्वातंत्रय को दर्शाना ही इन लेख का मुख्य उद्देश्य है। दूसरा उद्देश्य है जनसाधारण में सांस्कृतिक चेतना को जागृत करना ताकि प्रत्येक व्यक्ति समाज से कुछ न कुछ लेते समय उसको अपनी समझ और सामर्थ्य के अनुसार कुछ देने के लिए भी प्रवृत हो। यदि ऐसा हुआ तो समाज में स्वार्थ और शोषण की प्रवृति निश्चय ही दूर होगी।

स्पष्ट है कि प्रत्येक शिव के पश्चात् ब्रह्मा विद्यमान हो जाता है और भिन्न-भिन्न वस्तुओं और भावों की सृष्टि संस्थिति और विलय का कार्य चलता रहता है। यह धीरे-धीरे चलता है, सरकता-सा रहता है, इसीलिए संसार को सरकने

से संसार कहा जाता है। जो-जो व्यक्ति इस तथ्य को समझेगा, वह सरकता रहेगा, चंचल रहेगा और जीवित रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति के चलने से अन्य वस्तुओं आदि में अस्थिरता आती हैं। वह अस्थिरता व्यक्ति-विशेष की शक्ति और प्रभाव-क्षेत्र के हिसाब से कम या ज्यादा होती है। हर एक अस्थिरता स्थिरता की परीक्षा है और परीक्षाएं कभी समाप्त नहीं होती।

भगवान–एक आदरसूचक शब्द

लेख में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के लिए आदरसूचक शब्द "भगवान" का प्रयोग उनके विश्लेषण के रूप में बार-बार प्रयुक्त हुआ है। इस प्रयोग का कारण धर्मान्धता नहीं है। न ही इस विशेषण के प्रयोग न होने में किसी के लिए अनादर की भावना है। भगवान शब्द का अर्थ ऐश्वर्यशाली है और आध्यात्मिक दृष्टि से भौतिक धन आध्यात्मिक ऐश्वर्य के सामने बड़ा तुच्छ है। इसीलिए किसी भी महान व्यक्ति के नाम के साथ 'भगवान' शब्द का प्रयोग सहज ही होता रहा है। इस दृष्टि से इस लेख में इस शब्द का प्रयोग न करने से प्रयोग करना ही अच्छा समझा गया है।

भूतज्ञान और भविष्य निर्माण

यह स्पष्ट है कि कोई भी देश और जाति अपने भूत को भुलाकर और अपने उद्गम को जाने बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। भगवान शिव की कहानी सामान्य जनता की भिन्न-भिन्न युगों में सफलता और विफलता की कहानी है। इसलिए सामान्य जनता को अपने प्राचीन नेता भगवान शिव को अपनाकर और उन्हें ऐसा दिखाकर कि वे सामान्य जनता के 'भूतनाथ' हैं और 'पशुपति' हैं, अपनी सफलता का रास्ता चुनना होगा।

रुद्र से शिव बनो

भाव यह है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं ब्रह्मा बनकर अपना अपना संसार बनाने की शक्ति रखता है। उस संसार के पालन की जिम्मेदारी उसकी अपनी ही है। इस प्रकार वह स्वयं विष्णु बन सकता है। उस संसार से कभी-कभी मनुष्य की ही चिड़ हो जाती है, इसलिए वह स्वयं ही रूद्र-रूप मनुष्य धारण करके उसका विध्वंस करने को तत्पर हो जाता है। क्रोध छोड़कर यदि दूसरा पक्ष देखें, तो संसार के चलते रहने में ही उसको लाभ नजर आता है और उसे

चलने देना चाहता है। ये तीनों प्रवृत्तियाँ मनुष्य के मन में भी विद्यमान रहती हैं और मनुष्य से बाहर भी हैं। मानव अन्दर कम देखता है और बाहर ज्यादा। वह ब्रह्मा बनकर देखता है तो उसके सर्वत्र संहारक रुद्र ही दिखाई देता है और वह रुद्र बनकर देखता है तो उसको सब कुछ ब्रह्मा का प्रपंच-सा नजर आता है। व्यवस्था को बनाए रखने वाली शक्ति को विष्णु मानने से उस विष्णु में ब्रह्मा और रुद्र दोनों की दिलचस्पी नजर आती है। ब्रह्मा को लाभ है संसार को चलाने से, इसलिए वे विष्णु की सहायता करते हैं, रुद्र को लाभ है रुद्र-रूप को छोड़कर शिव-रूप धारण करने से, इसलिए भी संसार को चलाने देते हैं। इन प्रवृत्तियों को समझने से मनुष्य का दृष्टिकोण ही बदल जाएगा और उसका कायाकल्प हो जाएगा वह स्वयं त्रिमूर्ति ही बन जाएगा। सब जगह प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को ही देखेगा और औरों को भी।

इस दृष्टि से ही प्रत्येक व्यक्ति भगवान शिव है और वही इसका प्रतीक है, क्योंकि वह स्वयं ही सब कुछ का विनाश कर सकता है। परन्तु विनाश से लाभ क्या है? इसलिए किसी भी व्यक्ति को ब्रह्मा और विष्णु के प्रतीकों को अपनी शक्ति दिखानी चाहिए। वे दोनों उससे डरेंगे। यदि ऐसा हुआ तो वह व्यक्ति कैलाशपति होगा। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति एक समय में सरकारी सेवा में रहकर नौकरशाही का प्रतीक हो सकता है और वही व्यक्ति नौकरी से इस्तीफा देकर व्यापारी बन जाने के पश्चात् अपनी भूमिका और उसके संदर्भ में अपना वर्ग बदल लेता है। इसी प्रकार एक ही व्यक्ति अपने जीवन काल में कई वर्ग अथवा कई वर्ण बदल लेता है। अतः व्यक्ति स्वयं गौरीपति, पशुपति और भूतनाथ आदि बन सकता है। परन्तु हो सके तो उसे भोलानाथ बनने से बचना चाहिए। भोलानाथ बनते ही उसको विषपान करा दिया जायेगा।

शिव शोषितों के मित्र या शत्रु?

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए यदि आज का शोषित वर्ग इस तथ्य को समझ ले तो अपना भविष्य सुधार सकता है। परन्तु ब्रह्मा और विष्णु के प्रतीक शिव को अपनी ऊंघ से उभरने नहीं देते। ऐसी ही इस संसार की नियति रही है और रहेगी। यदि शोषक वर्ग इस वास्तविकता को जान ले, तो वह शोषितों के प्रति उदारता दिखाकर उनको व स्वयं को विनाश से बचा सकता है और वह वर्ग, जो न शोषकों में आता है और न शोषकों में। वह कभी इसकी और कभी उसकी कठपुतली बनने का घटिया काम छोड़कर वर्ग-संघर्ष को अधिक

घातक बनने से रोक सकता है। परन्तु प्रश्न यह है कि यह वास्तविकता सभी संबंधितों पर किस प्रकार उजागर हो। उन पर यह वास्तविकता उजागर करने के लिए आवश्यक सामग्री निष्पक्ष विचारशील बुद्धि-वर्ग तैयार कर सकता है। परन्तु बुद्धि-वर्ग के पास आवश्यक समय और साधन इस सामग्री को तैयार करने और उसे सभी संबंधितों के पास पहुंचाने के लिए नहीं है। सब प्रकार के साधन समाज के शासकों, शोषकों, उनकी कठपुतलियों और इन सबके संरक्षण में पलने वाले लोगों के पास हैं, जिनसे यह आशा करना निरर्थक है कि वह अपने स्वार्थ-विरोधी वास्तविकता को स्वयं द्वारा शोषितों और पीड़ितों तक पहुँचाने का विचार भी मन में लायेंगे।

इन परिस्थितियों में अनेक कारणों से एक सीमा से अधिक आशा नहीं की जा सकती और इसलिए परिणाम अधिक आशाजनक प्रतीत नहीं होते। क्या वह समाज के सभी प्रकार के प्रबुद्ध नेताओं के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती नहीं है? इस पर उन नेताओं को फुरसत निकाल कर सोचना होगा। ऐसा सोचने की आवश्यकता केवल आज के युग में ही नहीं है, बल्कि हर युग में और हमेशा ही रहती है और भविष्य में भी रहेगी। यह संसार इसी प्रकार उथल-पुथल खाता हुआ चलता रहता है। शायद इसी तथ्य को सामने रखकर किसी कवि ने कहा था–

यह चमन यूं ही रहेगा और हजारों जानवर
अपनी-अपनी बोलियां सब बोल कर उड़ जायेंगे।

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि चूंकि उपनिषदों और पुराणों के भगवान से संबंधित कथनों के अनुसार ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि शक्ति का न ही कोई रूप है और न ही कोई नाम है। वह देश एवं काल की सीमाओं से परे है और ब्रह्मा, विष्णु और शिव से संबंधित पौराणिक कथाएं इन सबको रूप रंग प्रदान करती है और इन तीनों को देश एवं काल में भी सीमित कर देती हैं, इन कथाओं के ब्रह्मा, विष्णु और शिव परमशक्ति के द्योतक नहीं हैं, परन्तु फिर भी इनका धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक महत्व है, जो न केवल भारत में और हिंदू धर्म में है बल्कि दुनिया के किसी भी देश में और किसी भी धर्म के अनुयायियों के लिए है।

□□□